OPEN ACCESS

Int. Jr. of Contemp. Res. in Multi. *PEER-REVIEWED JOURNAL* *Volume 4 Issue 6 [Nov- Dec] Year 2025*

Review Article

21वीं सदी की हिंदी कविता में प्रतिरोध का स्वर

डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले *

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग प्रमुख, स. का. पाटील सिंधुदुर्ग महाविद्यालय, मालवण, महाराष्ट्र, भारत

Corresponding Author: *डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.17695104

सारांश

यह शोधपत्र 21वीं सदी की समकालीन हिन्दी कविता में प्रतिरोध के स्वर और सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रति कवियों के उत्तर-आरोपों का विश्लेषण करता है। लेख में दिखाया गया है कि कैसे समकालीन कवि पारंपरिक सौंदर्य-आयोगों को चुनौती देते हुए वर्ग, जाति, लिंग और राज्य-सत्ता से जुड़े अन्याय के खिलाफ आवाज उठाते हैं; उस आवाज़ का निर्माण भाषाई प्रयोग, रूपात्मक नवाचार और स्थानीय/जनजीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों के माध्यम से होता है। अध्ययन में नगर और ग्राम, इतिहास और आजीवन संघर्षों के संदर्भ में कविता के बहुमुखी आयामों — प्रतिवाद, विस्थापन, पहचान-संघर्ष, तथा सामाजिक चेतना — पर ध्यान दिया गया है। लेख यह भी दर्शाता है कि समकालीन कविता न केवल व्यक्तिगत भावनाओं का प्रदर्शन है, बल्कि सामूहिक स्मृति और प्रतिरोधी राजनीति का साहित्यिक रूपांतरण भी है। निष्कर्ष में कहा गया है कि समकालीन हिन्दी कविता सामाजिक बदलाव की एक सक्रिय सांस्कृतिक शक्ति बनकर उभर रही है, जो नए पाठक-अनुभव और भाषिक संभावनाएँ खोलती है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 06-10-2025
- **Accepted:** 25-10-2025
- **Published:** 24-11-2025
- **IJCRM:**4(6); 2025: 224-229
- **©2025, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले. 21वीं सदी की हिंदी कविता में प्रतिरोध का स्वर. Int J Contemp Res Multidiscip. 2025;4(6):224-229.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

प्रमुख शब्द: 21वीं सदी की हिंदी कविताएँ; समकालीन कविता; प्रतिरोध का स्वर; समकालीन कविता में प्रतिरोध; सामाजिक व्यवस्था; सामाजिक चेतना; नई अभिव्यक्ति; सामाजिक यथार्थ; परिवर्तन की आवाज़

प्रस्तावना

कहते हैं कि साहित्य शाश्वत होता है। साहित्य कालजयी होता है। हजारों साल पहले लिखी गई रामायण की प्रासंगिकता आज भी है। संत कबीर की रचनाओं की शाश्वतता को कोई आज नकार नहीं सकता। सच है, काल का प्रवाह, अनादि, अनंत और अखण्ड होता है। फिर भी उस महाकाल को मानवीय काल गणना के टुकड़ों में बाँटकर प्रत्येक सदी को एक सामयिक कालखण्ड के रूप में देखा जाए तो उसकी अपनी अलग विशेषता होती है। इस नाते इक्कीसवीं सदी के युग-परिवेश की गहराई में पैठ कर उसकी युग-चेतना को अभिव्यक्त करना उस समाज की पुनर्रचना जैसी है। मानवीय अस्तित्व पर जब युग-परिवेश की चोट पड़ती है तो प्रतिक्रिया स्वरूप मानव में संवेदना और चेतना उत्पन्न होती है। जब यह संवेदना और चेतना साहित्य में रूपांतरित होती है तब समाज जाग्रत और चेतनशील होता है। उसे जीने की प्रेरणा मिलती है, नया अवलंब मिलता है। वह अपने व्यक्तित्व

© 2025 डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

को युग-चेतना से प्रेरित करता है और अपने व्यक्तित्व से युग-चेतना को प्रभावित।

विषय विवेचन

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक तक आते-आते हमारा समाज काफी सभ्य और शिक्षित वन चुका है। यह दशक वैज्ञानिक उत्कर्ष का दशक है। वैज्ञानिक उत्कर्ष के कारण यहाँ यंत्रों का महत्व बढ़ रहा है। मानव का मूल्य घटता जा रहा है। विज्ञान की जड़ता मानव की मानवता और उसकी चेतन-शक्ति का नाश कर रही है। वैज्ञानिक आविष्कारों से एक ही पल में लाखों लोगों को समाप्त किया जा सकता है। इससे हमारी सभ्यता निर्बल और जटिल होती जा रही है। फिर औद्योगिक सभ्यता के विकास के कारण जीवन यांत्रिक बनता जा रहा है। उसमें यांत्रिक उपादानों के प्रति विशेष रुचि बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप व्यक्ति की नैतिकता और मूल्यबोध घट रहा है। औद्योगिक सभ्यता और भोगवादी दृष्टिकोण के कारण एक व्यक्ति दूसरे को धक्का देकर आगे बढ़ने की होड़ में है। इससे समाज में मानवीय संकट उत्पन्न हो रहा है। मध्य वर्ग की रीढ़ टूट रही है। नागरीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ शिक्षित युवा-वर्ग बेरोजगारी की मार से निराश और घुटन की जिन्दगी जी रहा है. रोजी-रोटी की समस्या से जूझ रहा है। देश में मूल्य-हीनता, लक्ष-हीनता और अराजक अमानवीय प्रवृत्तियों का बोलबाला है। राजनीति हिंसा, शोषण और भ्रष्टाचार से जर्जरित हो रही है। देश की मूलभूत संस्कृति पर बर्बर आक्रमण हो रहे हैं। नारी की अस्मिता रोज लुटती है। व्यक्ति खुद को अकेला और असहाय समझते हुए
आतंक, भय, यंत्रणा, अनजबीपन, घुटन और विवशता के बीच जीने के लिए मजबूर है। इन्हीं परिस्थितियों में इक्कीसवीं सदी के पहले दशक का कवि जी रहा है और इसी युग-चेतना को वह अपनी कविताओं में उकेर रहा है।
सामाजिक परिवेश में विशेषकर आम आदमी ही जीता है। चारों तरफ फैले हुए भय, आतंक और छाया-युद्ध के कारण वह अधिक-से-अधिक दब्बू और शक्तिहीन महसूस करने लगता है। जिन्दा बचे रहने की उसकी असम्भव-सी कोशिश जारी है-

अब तो बस जिजीविषा और प्रार्थना के कवच में
जिन्दा बचे रहने की असंभव सी कोशिशें जारी हैं.....
ये जमीनदोज होते शहर जब अमन परस्तों के पसंदीदा
आखेट वन हैं यहाँ युद्ध एक स्थायी मौसम है।'1

बर्बर आतंकी आक्रमणों से आम आदमी पंगु और निरुपाय बन जाता है। चुपचाप सहने के अलावा उसके पास कोई दूसरा रास्ता नहीं है। वह हैरान है कि अचानक ये आतंकी किन अलक्षित ग्रहों से उतर कर आ जाते हैं। देखते ही देखते सैकड़ों को मौत के घाट उतारकर चले जाते हैं। इनकी पशुता से धरती काँप उठी है-

किन्हीं अलक्षित ग्रहों से उतर-उतार
स्वयं आ रहीं। भीतर से। पशुता के
अलक्षिता क्षितिजों से लक्ष्य में आ रहीं
पहले से अधिक घात
पहले से भी अधिक पातक मनुष्य
बढ़ते जा रहे
धरती पर
और धरती बुरी तरह काँप रही है
पीड़ाओं से घिरी
बे तरह हाँफ रही है !....?

जेहादी आक्रमण से आज भारत लहूलुहान है। कलकत्ता, दिल्ली जैसे-बड़े-बड़े शहर, भीड़-भाड़ भरे इलाके उनके निशाने में हैं। दिल्ली के संसद भवन और उच्च अदालत पर आक्रमण करके सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतारकर वे आम जनता में दहशत फैलाना चाहते हैं। अक्षर धाम और रघुनाथ मन्दिर जैसे श्रद्धा केन्द्र भी आज खून से लथपथ हैं, कवि विष्णुदत्त विलीन अपनी कविता 'निशान' में जहादियों का जिक्र करते हुए इसका चित्र उभार रहे हैं-

उफना उन्माद/फिर आकार लेकर
बिखर गई भीड़/पट गई लाशें
पसरा प्राण-पखेरू हीन खून
मंदिर में..... फर्श पर / खून से उभरे निशान
ये निशान / इंसानियत के डग जैसे नहीं,
जेहादी जूतों के गंदे तलवों के आकार जैसे हैं
ताजे रिश्ते जैसा / ताजा लाल खून
गंदला और भूरा होचला है।

जेहादियों के आतंक से दिशाएँ भयभीत हैं। शासक और प्रशासकों की आँखों की नींद उड़ गई है। सभी तत्पर हैं इन बर्बरों को रोकने के लिए। फिर भी राजधानी की धरती लाल होती रहती है। ऐसा क्यों ? यह सवालिया निशान लगाते हुए कवि कहता है-

अभी तक / लाल है धरती राजधानी की
भयभीत हैं दिशाएँ / रोज रोशनी में आँखे उड़ाए
जागती हैं रातों को भयवश सोती नहीं
दौड़ती है चारों ओर लाल-पीली बत्तियाँ तब भी....?

समाज में अस्थिरता फैलाने वाले गुण्डे, मवाली और आतंकियों से आम आदमी घबराया हुआ है। वह इन सारी घटनाओं से अनासक्त रहकर शांति से जीना चाहता है। क्योंकि वह अकेला है, कमजोर है भयभीत भी। पर ऊँचे ओहदों पर बैठे शासक प्रशासक, नेता कहीं न कहीं सहमे हुए लगते हैं। उनकी जान को भी खतरा है। प्रशासन की सारी ताकत अपने पास होते हुए भी ये उन असामाजिक तत्त्वों से पंगा लेना नहीं चाहते। उनकी इच्छा-शक्ति दबी-कुचली-सी लगती है। वे भी अपनी जान हत्यारों से बचाना चाहते हैं। कवि हेमंत कुकरेती जी का सपाट बयान देखिए-

दुष्ट आदमी के पीछे बैठे मैंने
शहर भर में जीवों पर दया करने की अपील की
यही काम रह गया है मेरा कि चाकू दिखाने वाले
मुझे अपना दोस्त समझें / और हत्यारों से बचा रखूँ जान।

© 2025 डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

देश का तंत्र जिनके हाथों में हो. वे यदि खुद को सुरक्षित रखने के लिए असामाजिक लोगों से साँठगाँठ करें तो आम आदमी का क्या होगा। देश का नेतृत्व करने वाले लोग यदि सुविधावादी हो जाएँ तो आम आदमी संत्रास के आगे घुटने टेकने लगता है। पुलिस भी इस कमजोर तंत्र के रहते आम आदमी की सुरक्षा की जिम्मेदारी को निभाती नहीं है। वह भी कहीं असामाजिक दुष्ट लोगों से समझौता कर लेती है। अपराधी लूट-खसोट और बलात्कार के बाद गायब हो जाते हैं। अपराध का शिकार थाने में रपट लिखाने जाता है तो दारोगा उसकी रपट लिखने को तैयार नहीं है। कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी इस त्रासदी का एक जीवंत चित्र उभार रहे हैं अपनी कविता 'दूसरे दिन का अखबार' में-

जी. आर. पी. दारोगा ने नहीं लिखी रपट
उस पहाड़ी युवक की जो लौट रहा था
जलंधर से कमाकर अपने देश नेपाल
जिसे गुंडों ने फेंक दिया चलती गाड़ी से बाहर
और उठा ले गए जिसकी बीस वर्षिया बहन को
जिसे सुंदर बनाया था उसके दुर्भाग्य ने.....

देश में अखबार वालों को गणतंत्र के तीसरे स्तंभ की मान्यता दी गई है। उनकी शक्ति और स्वायत्तता अभूतपूर्व है। आज उनका दामन भी साफ नहीं है। खबर निष्पक्ष ढंग से छपनी चाहिए। पर यह सब होता कहाँ है। अखबरनवीस भी शासनतंत्र की छाया में पल रहे हैं। आम आदमी की व्यथा-कथा अखबारों में छपती जरूर है, लेकिन देश के बाहुबलियों की दहाड़ और शासन-तंत्र पर काबिज लोगों के आत्म-विज्ञापन अखबरों में फैले रहते हैं। इसी कविता के सिलसिले में कवि तिवारी जी ने पत्रकारों को भी बख्शा नहीं है। रेलगाड़ी से लौट रहे उस युवक की बहन का तो कुछ पता नहीं चल पाया, किन्तु रेलमंत्री की दहाड़ अखबारों में जरूर गूंजने लगी-

एक ही दिन छपी यह खबर अखबार में
दूसरे दिन तलाशता रहा बेचैनी से
कि क्या हुआ उस पार्वती का ?
किस टीसन के पास रौंदी गद्र वह लक्ष्मी
गोदी गई चाकुओं से किस खेत में दुर्गा
किस कोठे पर बेची गई सरस्वती ?
मगर दूसरे दिन का अखबार
गूँज रहा रेलमंत्री की दहाड़ से
धनबल, बाहुबल, सुरक्षा बल के अट्टहास में
कहीं एक पंक्ति नहीं थी
उस अनाम अबला के बारे में।'

अखबारों से भी ज्यादा लोकप्रिय टी.वी. चैनल हैं। ज्यादातर चैनल आज पूंजीवादी और भोगवादी प्रवृत्तियों से नियंत्रित हैं। गरीब, दलित, पीड़ित लोगों का स्थान टी.वी. के चैनलों में न के बराबर है। क्योंकि निचले तबकों के इन लोगों के पास न धन है न सौंदर्य। इन मेहनतकश लोगों की जिन्दगी रोजी-रोटी कमाने में गुजर जाती है सुनहरे पर्दे पर झूठे रंगीन सपनों का मायाजाल बुनने वाले टी.वी. के चैनलों को आड़े हाथ लेने से पहले कवि सुशांत सुप्रिय ने अपनी कविता 'कामगार औरतें' में कामगार औरतों की नग्न वास्तविकता का एक चित्र प्रस्तुत किया है-

कामगार औरतों के / स्तनों में पर्याप्त दूध नहीं उतरता
मुरझाए फूल से / मिट्टी में लोटते रहते हैं
उनके नंगे बच् बच्चे / उनके पूनम का चांद
झुलसी रोटी सा होता है उनकी दिशाओं में भरा होता है
एक मूक हाहाकार।

कामगार औरतों की इस दुर्दशा से कवि मर्माहत है। यही औरतें फ्लाई ओवरों से लेकर गगन चुंबी इमारतों तक को बनाती हैं। इन थकी माँदी कामगार औरतों की चाल गगन चुंबी इमारतों तक को बनाती है। इन थकी-माँदी कामगार औरतों की चाल में एक करुण सौंदयं छिपा हुआ है। आज के टी.वी. चैनलों की नज़र में वह करुण सौंदर्य का कोई मायने नहीं। वे केवल 'विश्व सुंदरियों की कैट-वॉक' के दीवाने हैं-

हालाँकि / टी.वी. चैनलों पर
सीधा प्रसारण होता है केवल 'विश्व सुंदरियों' की
'कैट-वॉक' का / पर उससे भी कहीं ज्यादा सुंदर होती है
कामगार औरतों की थकी चाल।'

शारीरिक बनावट की दृष्टि से स्त्री हमेशा पुरुष के आकर्षण का केन्द्र रही है, पर शारीरिक दृष्टि से वह पुरुष से हमेशा कमजोर रही है। इसलिए नारी हमेशा खुद को असुरक्षित समझती है। इक्कीसवीं सदी के शिक्षित और सभ्य समाज में भी नारी सुरक्षित नहीं है। पुरुष का सौंदर्य-बोध अकेली स्त्री की छाया के मायावी अँधेरे में कहीं लुप्त हो जाता है। उसकी काम पिपासा स्त्री के दामन को तार-तार करने के लिए तत्पर हो उठती है। कभी-कभी सिद्ध पुरुष भी इसके अपवाह नहीं होते। कवि आशीष त्रिपाठी ने अपनी कविता 'अकेली औरत' में असुरक्षित स्त्री का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है-

अकेली औरत
तीखी चुभन भरी धूप में चलकर
बड़ी उम्मीद से
पहुँचती है सिद्धियों वाले
मीठे जल से भरे जलाशय में
उसे देखते ही सिद्ध-पुरुष
मगरमच्छ में हो जाते हैं तब्दील।"

कवि को शीतल जल के भीतर, उसकी जैसी अनेक अकेली स्त्रियाँ निर्वस्त्र दिखाई पड़ती हैं। अकेली औरत हाथ में जल लेने से पहले डरकर भागती है। जब वह औरत बदनाम होकर सिर झुकाती है तब कवि का मर्माहत हृदय नारी में विद्रोह की ज्वाला भरना चाहता है। वह नारी को उद्विग्न मीरा की तरह नृत्य करते हुए देखना चाहता है-

अकेली औरत
जब बदनाम होकर
सर झुकाती है
मीरा उद्विग्न होकर नाचती है।

© 2025 डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

नारी हमेशा से अपनी धुरी पर स्थिर रही है और हमेशा से अत्याचार और तिरस्कार को झेलती रही है। उसकी अक्षमता का बोध उसे कचोटता रहता है। इस शताब्दी की नारी उस उत्पीड़न से छुटकारा पाने के लिए छटपटा रही है। कोई उसे कुलक्षणी और पैरों को जूती कहे, यह उसे मंजूर नहीं है। वह पुरुष के समकक्ष होना चाहती है। पुरुषपूर्ण समय का वह अंत चाहती है। आज स्त्री आंदोलित होने लगी है। आधुनिक स्त्री के इस विद्रोही रूप का एक उग्र चित्र कवि मीठेश निर्मोही ने अपनी कविता 'आंदोलित है स्त्री' में उकेरने का सफल प्रयास किया है-

एक लयबद्ध गति के साथ
उघाड़ लिया है घूँघट उसने
इसी गति से निकल आई है वह
चक्रव्यूह से बाहर.....

पहचान लिए हैं उसने
अपनी पहचान छीन लेने वालों के चेहरे
मोबाइल और इंटरनेट जैसे हथियारों से लैस
पुरुषपूर्ण समय के अंत के लिए
प्रार्थना रत नहीं, सुनामी लहरों सी
आंदोलित है स्वी।

नारी का इस तरह आंदोलित होना नारी के अपने सुरक्षा वलय के निर्माण तक ठीक है। इस सदी की नारी कभी-कभी पश्चिमी सभ्यता के संपर्क में आकर पति-पत्नी के संपर्क को सामयिक मान बैठती है। पश्चिमी देशों के अनुबंध-विवाह की लीक पर कदम रखना शुरू करती है। इससे मूल्यबोध पर आधारित भारतीय दांपत्य-जीवन में विघटन आने लगा है। व्यंग्य कवि संत कुमार 'टण्डन' रसिक ने 'गठबंधन' कविता में नारी की इस उच्छृंखलता पर करारा व्यंग्य किया है-

शादी के तीसरे वर्ष
तलाक का नोटिस देते हुए
पत्नी ने कहा-
नया गठबंधन बनाऊंगी
मेरे सरकार-
जिन्दगी अपनी मर्जी से चलाऊगी
मेरे सरकार !"

औरत की एक विशेषता यह कि वह भावी पीढ़ी को कोख में धारण करती है, सँभालती है और जन्म देती है। उसकी यह गरिमा है कि वह सृष्टि को आगे बढ़ने देती है। पर इस सदी की एक विचित्र हीनमन्यता है कि औरत की कोख में पलने वाली एक और नन्हीं औरत के विनाश का कुचक्र चल रहा है। औरत को धरती पर न आने देने की बलवती चाह के पीछे भले ही कई कारण रहे हों, पर इस चाह को उकसाने का काम कर रहा है आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण। शिशु को औरत के साँचे में ढलते ही उसकी पहचान करा दी जाती है और एक बूढ़ी औरत कहती है कि नहीं चाहिए हमें पोती। तब कोख में पलने वाली नहीं औरत विकल हो उठती है। उसकी वेदना को बड़ी संवेदनशील भाषा में कवि मामराज शर्मा 'डूब गई पृथ्वी' कविता में चित्रित करते हैं-

ओट में खड़ी पृथ्वी / काँप गई अंदर तक
उसे लगा / वह उजड़ने वाली है
तभी अन्दर से एक नन्हीं आवाज आई-
माँ मुझे बचा लो मैं भी उगूँगी
रोपूँगी नवजीवन मैं, जो लूँगी, जैसे भी
नहीं चाहिए मुझे / महंगे खिलौने
नहीं मागूँगी महंगे फ्राक / गजरे-गहने
न मनाना जन्म दिन मेरा।"

माँ की कोख में मिटने की संभावना से पीड़ित वह नन्हीं सी बच्ची कुलबुलाने लगती है। उसकी कुलबुलाहट को कवि प्रदीप शर्मा 'स्नेही' ने 'अजन्मी लड़की की पीड़ा' कविता में उकेरने का एक संवेदनशील प्रयास किया है-

जन्मने से पूर्व ही / मुझे मत मारो।
न बजाओ शगुनी थाली न गाओ मंगल गीत,
न मनाओ जश्न बेशक मेरे जन्मने का
पर आँख खोलने से पूर्व ही तो मुझे मत करो।
मैं ही न रही तो सच मानिए 'कुल दीपक' भी पैदा न होंगे।"

आजादी के बाद हमारे नेतृवर्ग ने देश की शासन व्यवस्था के लिए जनतंत्र को चुना। तद्नुसार संविधान बना। आम लोग गवाह है कि इन छः दसधियों में जनतंत्र से धीरे-धीरे जन घिस गया है। बहुमत के बाद सत्ताधारियों ने संविधान की ओट में अपने उल्लू सीधे किए। जन-कल्याण की भावना दूर हो गई है। आज संविधान सिसक रहा है। देश की इस त्रासदी को कवि नीलकमल ने 'मेरे देश का नाम' कविता में उतारने की सफल चेष्टा की है-

यह कौन-सी जगह है / अराजकता के पहाड़ पर
जहाँ / जनतंत्र के हलक में
आधी शताब्दी से / बनी हुई है प्यास,
जनतंत्र से गायब होते / जन का
यह कौन-सा परिदृश्य है / जहाँ
दुनिया का सबसे मोटा संविधान
जूतियों के तले सिसकता है।"

जब-जब तंत्र जन से अलग हुआ है, तब-तब समाज सेवियों ने तंत्र से जन को जोड़ने के लिए आंदोलन किए हैं। अभी इसी साल बाबा रामदेव और अन्ना हजारे ने आंदोलन किए। जन आंदोलन इतना तीव्र था कि उसके चीखते हुए नारों से आकाश काँप उठा। स्वार्थ के आकाश से तंत्र झुक झुककर जन के पास आने लगा। समाज सेवियों का यह कार्य कवि अपनी लेखनी के जरिए सतत करता रहा है। जहाँ तंत्र स्वेच्छाचारी होगा, वहाँ कवि की चीख उठेगी। कवि अनुज शर्मा की कविता 'चीख' इसका साकार रूप है-

आजादी मिलने के बाद देश के विद्वानों ने संविधान बनाया। कई दशकों के बाद सत्ताधारियों ने देश को सेक्यूलर घोषित किया। उससे पहले भी देश अघोषित सेक्यूलर ही था। पर अपने विरोधियों पर जातिवाद और संप्रदायवाद का दोष मढ़ने के लिए यह घोषित सेक्यूलरवाद काम आया। सत्ताधारी जिस रास्ते पर चलते हैं वह समाजवाद और गाँधीवाद है। पर जब विरोधी उस रास्ते पर चलते हैं

© 2025 डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

तब वह जातिवाद और संप्रदायवाद हो जाता है। कवि वेद प्रकाश साहू ने 'बोलती तस्वीर' कविता में इस पर कठोर व्यंग्य किया है-

उस पहाड़ी नदी के बहते पानी में भी,
साफ दिखाई देती हैं, / तस्वीरें।
भई, वाह क्या कहने ?
आप कहें तो सेक्यूलर,
समाजवाद ओर गांधीवाद है।
हम कहें तो रहस्यवाद,
जातिवाद और संप्रदायवाद है।"

राज नेता सत्ता हथियाने के लिए नोट की खातिर समाज को मत, पंथ, संप्रदाय और कौम में बाँटते हैं। वोट बैंक बचाने की खातिर ये सेक्यूलर नेता किसी विशेष संप्रदाय का तुष्टीकरण करते हैं। इसलिए सांप्रदायिक सद्भाव बिगड़ने लगता है, ईष्र्या और द्वेष का बीज वपन होने लगता है। कवि साहू इस सामाजिक विघटन के प्रति सजग हैं। उनका उद्गार उल्लेखनीय है-

सेक्यूलर नेता,
तुष्टीकरण नीति अपनाते हैं।
वोट बैंक बचाने की खातिर
एक पक्षीय राग अलापते हैं।"

राजनेताओं की तुष्टीकरण की इस नीति के कारण समाज बँटता है। सांप्रदायिक द्वेष उभरने लगता है। आम आदमी इस द्वेष की आँच से झुलसने लगता है। गोधरा उसका उदाहरण है और गुजरात उसका परिणाम। इस युग-चेतना से कवि कैसे दूर रह सकता है। कवि हेमंत कुकरेती जी की कविता 'बादल घिरने पर इन दिनों' में इसका एक करुण दृश्य हमें देखने को मिलता है-

गुजरात में बलबला था
शाम की आँखों में जमा हो रही थी रात की ओस
कल्याणकारी राज्य में अपने हकों से वंचित नागरिक
गटर में ढूँढ रहे थे ठिकाना
कैसा समाज बना रही थी राजनीति कि....।"

राजनैतिक दाँव-पेंच में समाज का आम आदमी रुचि नहीं रखता। पर सांप्रदायिकता हादसों का सबसे ज्यादा शिकार होता है आम आदमी। उन्हें अपने रोजमर्रे की जिन्दगी से फुर्सत नहीं है। उपासना पद्धति उसकी अपनी वैयक्तिक है। इससे आगे वह वेद और कुरान को कुछ नहीं समझता। आम आदमी के इस विचार को अभिव्यक्त किया है कवयित्री स्वर्णलता जो ने अपनी कविता 'फिर बहेगा मकरंद' में-

आज बेअसर सी / लगती है कुरान की आयतें
और / वेद ऋचायें / धर्म के रहनुमाओं की आवाज
मात्र चीख बनकर / रह गई हैं आतंक के माहौल में /
पथरा-सी गई है / आदमी की संवेदनाएँ
गुम है / जरद चेहरे से / मुस्कान
वक्त के दहलीज पर रेशमी सुबह की प्रतीक्षा में।"

आम आदमी ज्यादा जुड़ा हुआ है सरकार की अर्थनीति से। अर्थनीति के विकास से ही सुख-समृद्धि बढ़ सकती है। ढेर सारे लोगों को पता भी नहीं होता कि गीता में क्या है और कुरान में क्या है? रोजी-रोटी से जुड़े आम आदमी के इस विचार को हम देख सकते हैं कवि प्रभाकर चैबे की कविता 'जो जानता हूँ' में-इसलिए चुप रहता हूँ।
अर्थ के बिना व्यक्ति का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। सुबह निकला हुआ आदमी शाम को बिना कमा५ लौटता है तो उसके पैर ठिठक जाते हैं। गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले अनगिनत लोग रोज कमाते हैं रोज खाते हैं। वे यदि सब कुछ खोकर घर लौटेंगे तो दोस्त, दोस्त नहीं रह जाएगा और घर, घर नहीं। ऐसे तंग हाल में जीने वाले लोगों के यथार्थ को कवि अरुण कमल ने रूपायित किया है अपनी कविता 'निर्बल के गीत' में-

कोई कुछ नहीं देगा
एक जून भोजन भी नहीं रात भर आसरा तो दूर
जब तुम सब कुछ खोकर खाली हाथ
अपने ही घर लौटोगे शाम को
तब पाओगे वह तुम्हारा घर नहीं
किसी दोस्त को पुकारेगे वह मुड़ेगा और आगे चल देगा"

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक को पार कर चुकने के बाद भी हमारे देश में अनगिनत गरीब भूखे लोग बस रहे हैं। हमारा देश गरीब नहीं, हमारे देश की व्यवस्था दुर्बल है। राजनैतिक इच्छा शक्ति दुर्बल है। शासन की डोर को थामे रहने वाले अन्तिम व्यक्ति का लोक-चरित्र शुद्ध नहीं है। लोग भूखे हैं और गोदामों में दान बंद सड़ रहे हैं। कवि जगन्नाथ विश्व अपनी कविता 'अनुरोध' में इस बात का पर्दाफास करते हुए लिखते हैं-

परतंत्रता के पिंजरे में
स्वतंत्रता का पंछी, भूख के मारे
तड़फड़ा कर सो गया है
जिन दानों पर उसका नाम लिखा
वे दाने गोदामों में बंद सड़ रहे हैं....."

इक्कीसवीं सदी की कविता में युग चेतना पर समीक्षा करते हुए हमें कहना पड़ रहा है कि यह एक शोध का विषय है। आलेख के पन्ने इस विषय के लिए कम पड़ जाते हैं। किसी भी सदी की युग-चेतना बहुआयामी होती है। आम आदमी से संबंधित उसके अनेक रूप और अनेक पहलू होते हैं। हमने चर्चा में देश और समाज फैले आतंक, नेतृवर्ग की रुग्ण मानसिकता, नारी की दुर्दशा, सांप्रदायिक सद्भाव में विघटन, शासन तंत्र की दुर्बलता और गरीब आदमी की भूख आदि को शामिल किया है। मैंने देश और समाज की इस सदी की वास्तविक सच्चाई को जानने के लिए अनेक कवियों की कविताओं के माध्यम से अधिकतर सामाजिक बुराइयों को अभिव्यक्त किया है। अंधकार को जाने बिना आलोक को सही मायने में पहचानना कठिन है। मेरी चर्चा का अर्थ यह नहीं कि देश और समाज में कहीं शांति नहीं है, अच्छे लोग नहीं है। यहाँ कवि रवीन्द्र स्वप्निल प्रजापति की कविता 'वह खिलाफ था कुछ चीजों के' का उदाहरण प्रासंगिक लगता है-

वह सड़क के खिलाफ आवाज देता है
तुम पूरे शहर के खिलाफ हो

© 2025 डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

जाते हो उसने कहा था इस गली के नेता बेईमान हैं और
चुनाव में कुछ कमियाँ हैं
तुमने समझा सब बेईमान और भ्रष्ट हैं
चुनाव बकवास और सरकारें दिशाहीन।"

संदर्भ

1. मिलिंद प्रभात. यहाँ युद्ध का स्थायी मौसम है. समकालीन भारतीय साहित्य. 2003;नवम्बर-दिसम्बर:109.
2. वंशी बलदेव. धरती हाँफ रही है. समकालीन भारतीय साहित्य. 2003;नम्बर-दिसम्बर:111.
3. विष्णुदत्त. निशान. भाषा. 2004;मई-जून:176.
4. वही. भाषा. 2004;मई-जून:178.
5. कुकरेती हेमंत. यह क्या हुआ. शतक अंक. 2003;फरवरी:194.
6. तिवारी विश्वनाथ प्रसाद. दूसरे दिन का अखबार. समकालीन भारतीय साहित्य. 2003;सितम्बर-अक्टूबर:124.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

About the corresponding author

डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले स. का. पाटील सिंधुदुर्ग महाविद्यालय, मालवण (महाराष्ट्र) में हिंदी विभाग के प्रमुख एवं सहयोगी प्राध्यापक हैं। हिंदी भाषा और साहित्य में उनकी विशेष रुचि है। वे शोध, अध्यापन और साहित्यिक गतिविधियों के माध्यम से हिंदी के विकास में सक्रिय योगदान दे रहे हैं।

© 2025 डॉ. हंबीरराव मारुती चैगले. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/